

Chapter पैंतालीस

कृष्ण द्वारा अपने गुरु-पुत्र की रक्षा

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह देवकी, वसुदेव तथा नन्द महाराज को सान्त्वना दी और फिर उग्रसेन को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसमें यह भी वर्णन हुआ है कि कृष्ण तथा बलराम किस तरह अपनी शिक्षा पूरी करके अपने गुरु के मृत पुत्र को वापस लाये और फिर घर लौटे।

यह देखकर कि उनके माता-पिता—देवकी तथा वसुदेव—उन्हें ईश्वर के वास्तविक रूप में समझ चुके हैं, श्रीकृष्ण ने पुनः अपनी योगमाया का विस्तार किया जिससे वे उन्हें अपने प्रिय पुत्र के रूप में मान सकें। तब बलराम के साथ कृष्ण उन दोनों के पास पहुँचे और कहा कि हमें यही दुख है कि साथ रहकर भी, हमारे माता-पिता और हम पारस्परिक सन्तोष नहीं पा सके। फिर उन्होंने कहा, “कोई भी पुत्र एक सौ वर्ष की जीवन अवधि में भी अपने उन माता-पिता के ऋण से उन्मूढ नहीं हो सकता जिनसे उसे शरीर प्राप्त होता है। कोई भी सक्षम पुत्र, जो अपने माता-पिता की सेवा-सुश्रूषा नहीं कर पाता उसे अगले जीवन में अपना ही मांस खाना पड़ता है। निस्सन्देह जो व्यक्ति अपने संरक्षण में रहने वाली सन्तान, पत्नी, आध्यात्मिक गुरु, ब्राह्मण, माता-पिता इत्यादि की सेवा-सुश्रूषा नहीं कर पाता वह जीवित शव के समान है। हम तो कंस के भय से आपकी सेवा नहीं कर पा रहे थे अतः आप हमें क्षमा कर दें।” श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर भावविभोर वसुदेव तथा देवकी ने अपने दोनों पुत्रों को गले से लगा लिया और आनन्द के आँसुओं की झड़ी लगा दी।

इस प्रकार अपने माता-पिता को प्रसन्न करके कृष्ण ने कंस का राज्य अपने नाना उग्रसेन को दे दिया और तब अपने उन पारिवारिक सदस्यों के अपने अपने घरों को लौटने की व्यवस्था की जो कंस के भय से भाग गये थे। कृष्ण तथा बलराम के बलशाली बाहुओं के संरक्षण में सारे यादव परमआनन्द का अनुभव करने लगे।

इसके बाद कृष्ण तथा बलराम नन्द महाराज के पास गये और उनकी इस बात के लिए प्रशंसा की कि उन्होंने पराये पुत्रों का इतने लाड़-प्यार से पालन किया। तत्पश्चात् कृष्ण ने नन्द से कहा, “हे

पिताश्री! आप ब्रज लौट जायें। हम जानते हैं कि हमसे बिछुड़ने से आपको तथा हमारे अन्य सम्बन्धियों को कितना कष्ट होगा, यहाँ मथुरा में आपके मित्रों को संतुष्ट करने के तुरन्त बाद मैं बलराम सहित आपके पास लौट आऊँगा।” फिर कृष्ण ने नाना प्रकार की भेंटें अर्पित करते हुए नन्द की पूजा की। अपने पुत्रों के प्रेम के वशीभूत हो नन्द भावविभोर हो उठे। आँखों में अश्रु भरकर उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को गले से लगाया और सारे ग्वालियों को साथ लेकर ब्रज के लिए प्रस्थान किया।

इसके बाद वसुदेव ने पुरोहितों से कहा कि वे उनके पुत्रों का द्विज-संस्कार सम्पन्न करें। तब कृष्ण तथा बलराम ब्रह्मचर्य-व्रत प्राप्त करने गर्ग मुनि के पास गये। सर्वज्ञ होते हुए भी कृष्ण तथा बलराम ने अपने गुरु के आश्रम में रहने की इच्छा व्यक्त की, अतः वे अवन्तिपुर में सान्दीपनि मुनि के साथ रहने चले गये।

गुरु की सेवा किस तरह करनी चाहिए इसकी सही विधि की शिक्षा देने के लिए कृष्ण तथा बलराम ने अपने गुरु की सेवा उसी तरह की, जिस तरह भगवान् के अर्चाविग्रह की की जाती है। सान्दीपनि मुनि ने उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें समस्त वेदों के साथ साथ छहों वेदांगों और उपनिषदों का विस्तृत ज्ञान प्रदान किया। कृष्ण तथा बलराम एक बार सुनकर ही इनको आत्मसात कर लेते और इस तरह उन्होंने ६४ दिनों में चौंसठों परंपरागत कलाएँ सीख लीं।

विदा लेने के पूर्व दोनों भाइयों ने अपने गुरु सान्दीपनि से इच्छित दक्षिणा लेने के लिए कहा। बुद्धिमान गुरु ने दोनों के अद्भुत पराक्रम को देखते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे उनका पुत्र वापस ला दें, जिसकी मृत्यु प्रभास सागर में हो चुकी थी।

कृष्ण तथा बलराम एक रथ पर सवार होकर प्रभास गये और वहाँ वे सागर के अधिदेव के पास पहुँचे और उनकी पूजा की। कृष्ण ने सागर से कहा कि वह उनके गुरु-पुत्र को लौटा दे। तब सागरराज ने उत्तर दिया कि समुद्र के भीतर निवास करने वाले पञ्चजन नामक राक्षस ने उस लड़के का हरण किया है। यह सुनकर कृष्ण समुद्र में प्रविष्ट हुए, फिर उस राक्षस का वध किया और वह शंख ले लिया जो उसके शरीर में से निकला था। किन्तु जब कृष्ण को उस राक्षस के उदर में गुरु-पुत्र नहीं मिला तो वे यमराज लोक पहुँचे। जब यमराज ने कृष्ण को पाञ्चजन्य बजाते सुना तो वह बाहर निकल आया और उसने भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। तब कृष्ण ने उससे सान्दीपनि के पुत्र को माँगा जिसे यमराज ने

उन्हें तुरन्त दे दिया।

तत्पश्चात् कृष्ण तथा बलराम अपने गुरु के पास आये और उन्हें उनका पुत्र लाकर भेंट किया तथा उनसे दूसरी दक्षिणा भी माँगने की विनती की। किन्तु सान्दीपनि मुनि ने कहा कि उन जैसे शिष्यों को पाकर उनकी सारी मनोकामनाएँ पूरी हो चुकी हैं। इस प्रकार उन्होंने दोनों को घर लौट जाने का आदेश दिया।

कृष्ण तथा बलराम ने रथ पर चढ़कर अपने घर तक की यात्रा की। उनके आगमन पर, उन्हें देखकर, सारे लोगों को अपार हर्ष हुआ, मानो उनका खोया हुआ कोष प्राप्त हुआ हो।

श्रीशुक उवाच

पितरावुपलब्धार्थो विदित्वा पुरुषोत्तमः ।

मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पितरौ—माता-पिता ने; उपलब्ध—अनुभव करने के बाद; अर्थो—भाव (ईश्वर के रूप में उनका वैभवशाली पद); विदित्वा—जानकर; पुरुष-उत्तमः—परम पुरुष ने; मा भूत् इति—“ऐसा नहीं होना चाहिए”; निजाम्—अपनी; मायाम्—माया को; ततान—विस्तार दिया; जन—भक्तगण को; मोहिनीम्—मोहने वाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यह जानकर कि उनके माता-पिता उनके दिव्य ऐश्वर्य से अवगत हो चुके हैं, भगवान् ने यह सोचा कि ऐसा नहीं होने दिया जाना चाहिए। अतः उन्होंने अपने भक्तों को मोहने वाली अपनी योगमाया का विस्तार किया।

तात्पर्य : यदि वसुदेव तथा देवकी कृष्ण को सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में देख लेते तो पुत्र के रूप में कृष्ण के प्रति उनका प्रबल प्रेम नष्ट हो जाता। कृष्ण ऐसा नहीं चाहते थे। वे तो उनके साथ वात्सल्य रस का आनन्द लेना चाह रहे थे। जैसाकि श्रील प्रभुपाद प्रायः इंगित किया करते थे, यद्यपि हम सामान्यतः ईश्वर को परम पिता के रूप में सोचते हैं किन्तु कृष्णभावनामृत में हम भगवान् की लीलाओं में प्रवेश करके उनके माता-पिता का अभिनय करके उनके प्रति अपने प्रेम को प्रगाढ़ बना सकते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर संकेत करते हैं कि जन शब्द का “भक्तों” के रूप में किया जा सकता है जैसाकि भागवत के श्लोक (३.२९.१३) दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः में आया है। उनके अनुसार जन का “माता-पिता” के रूप में भी किया जा सकता है क्योंकि जन शब्द जन् धातु से

बना है, जिसका अर्थ है “जन्म देना।” इस अर्थ में (जैसाकि जननी या जनकौ में है) जन-मोहिनी से सूचित होता है कि भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति का विस्तार करना चाह रहे थे, जिससे वसुदेव तथा देवकी पुनः उन्हें अपने प्रिय पुत्र की भाँति प्यार कर सकें।

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वन्र्षभः ।

प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

उवाच—कहा; पितरौ—अपने माता-पिता के; एत्य—निकट जाकर; स—सहित; अग्र-जः—बड़े भाई, बलराम; सात्वन्—सात्वत वंश का; ऋषभः—महानतम वीर; प्रश्रय—विनीत भाव से; अवनतः—झुकाकर; प्रीणन्—प्रसन्न करते हुए; अम्ब तात इति—“हे माता, हे पिता”; स-आदरम्—सम्मानपूर्वक।

सात्वतों में महानतम भगवान् कृष्ण अपने बड़े भाई सहित अपने माता-पिता के पास पहुँचे। वे उन्हें विनयपूर्वक शीश झुकाकर और आदरपूर्वक “हे माते” तथा “हे पिताश्री” संबोधित करके प्रसन्न करते हुए इस प्रकार बोले।

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ।

बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन्क्वचित् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अस्मत्तः—हमारे कारण; युवयोः—आप दोनों के लिए; तात—हे पिता; नित्य—सदैव; उत्कण्ठितयोः—चिन्तित; अपि—निस्सन्देह; बाल्य—बालकाल का (आनन्द); पौगण्ड—बालपना; कैशोरः—तथा किशोरावस्था; पुत्राभ्याम्—आपके दोनों पुत्रों के कारण; अभवन्—हुआ था; क्वचित्—कुछ।

[भगवान् कृष्ण ने कहा] : हे पिताश्री, हम दो पुत्रों के कारण आप तथा माता देवकी सदैव चिन्ताग्रस्त रहते रहे और कभी भी हमारे बाल्यकाल, पौगण्ड तथा किशोर अवस्थाओं का आनन्द भोग नहीं पाये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है : यह आपत्ति उठाई जा सकती है कि अभी भगवान् कृष्ण ने किशोर अवस्था (१०-१५ वर्ष) पार नहीं की है क्योंकि मथुरा की स्त्रियों ने कहा है—क्व चाति सुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ—कृष्ण तथा बलराम के अंग-प्रत्यंग अतीव सुकुमार हैं, क्योंकि वे अभी किशोर अवस्था में हैं, युवावस्था तक नहीं पहुँच पाये (भागवत १०.४४.८)। वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।

कैशोरम् आपञ्चदशाद् यौवनं तु ततः परम् ॥

‘कौमार अवस्था पाँच वर्ष तक, पौगण्ड अवस्था १० वर्ष तक और कैशोर अवस्था १५ वर्ष तक रहती है। इसके बाद यौवन आता है।’ इस परिभाषा के अनुसार कैशोर अवस्था की समाप्ति पन्द्रह वर्ष की आयु में होती है। जब कृष्ण ने कंस का वध किया था, तो उनकी आयु ग्यारह वर्ष की ही थी जैसाकि उद्धव के शब्दों से पता चलता है—*एकादशसमास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत्*—ढकी ज्वाला की तरह कृष्ण बलराम के साथ ग्यारह वर्षों तक अज्ञात रहते रहे (*भागवत* ३.२.२६)। चूँकि कृष्ण तथा बलराम ने ब्रज-भूमि में ब्राह्म-दीक्षा नहीं ली थी अतः इसी समय (मथुरा जाते समय) उनकी कैशोरावस्था प्रारम्भ हुई, न कि समाप्त हुई।

प्रस्तुत श्लोक में कृष्ण के इस कथन के प्रति आक्षेप कि “उनके माता-पिता उनकी कैशोरावस्था का आनन्द नहीं उठा पाये” सामान्य आयु-गणना पर आधारित है। फिर भी हमें निम्नलिखित कथन (*भागवत* १०.८.२६ से) पर विचार करना चाहिए—

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोव्रजे ।

अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥

“हे राजा परीक्षित! राम तथा कृष्ण अल्पकाल में ही गोकुल में बिना रेंगे ही पाँवों पर अपने बल पर आसानी से चलने-फिरने लगे।” कभी कभी हम देखते हैं कि राजा का पुत्र पौगण्ड अवस्था में ही असामान्य शारीरिक वृद्धि प्राप्त करके कैशोरावस्था के अनुकूल कार्य करने लगता है। तो फिर कृष्ण के विषय में क्या कहा जा सकता है जिनकी असाधारण शारीरिक वृद्धि *वैष्णवतोषणी*, *भक्तिरसामृतसिन्धु*, *आनन्दवृन्दावनचम्पू* तथा अन्य कृतियों द्वारा सिद्ध है ?

महावन में भगवान् कृष्ण ३ वर्ष ४ मास रहे जो सामान्य बालक के पाँच वर्षों के तुल्य थे। इस तरह उन्होंने अपनी कुमारावस्था पूर्ण की। तब से लेकर ६ वर्ष ८ मास की आयु तक, जब वे वृन्दावन में रहे उनकी पौगण्डावस्था है। ६ वर्ष ८ मास की आयु से लेकर दसवें वर्ष तक, जिसमें वे नन्दीश्वर (नन्द-ग्राम) में रहे उनकी कैशोर अवस्था है। तत्पश्चात् १० वर्ष ७ मास की अवस्था में चैत्र मास के कृष्ण-पक्ष की एकादशी को वे मथुरा गये और उस के बाद चतुर्दशी को कंस का वध किया। इस तरह उन्होंने दस वर्ष की आयु में ही अपनी कैशोरावस्था पूरी कर ली और तब से वे उसी अवस्था में बने

हुए हैं। दूसरे शब्दों में, इससे हमें यह समझना चाहिए कि इसके बाद से भगवान् सदैव किशोर हैं।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की गुत्थियों को इस प्रकार ही सुलझाया है।

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ।

यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; लब्धः—प्राप्त; दैव—भाग्य द्वारा; हतयोः—वंचित; वासः—आवास; नौ—हम दोनों के द्वारा; भवत्-अन्तिके—आपकी उपस्थिति में; याम्—जो; बालाः—बालक; पितृ—अपने माता-पिता के; गेह—घरमें; स्थः—रहकर; विन्दन्ते—अनुभव करते हैं; लालिताः—पाले गये, लाड़-प्यार किये गये; मुदम्—सुख।

भाग्य द्वारा वंचित हम दोनों न तो आपके साथ रह पाये, न ही अधिकांश बालकों को उनके माता-पिता के घर में मिलने वाले लाड़-प्यार के सुख को हम भोग सके।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् कृष्ण यह बतलाते हैं कि उन दोनों के वियोग से न केवल उनके माता-पिता को कष्ट हुआ बल्कि उन दोनों बालकों को भी अपने माता-पिता से विलग होने के कारण कष्ट भोगना पड़ा।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।

न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सर्व—समस्त; अर्थ—जीवनलक्ष्य का; सम्भवः—स्रोत; देहः—शरीर; जनितः—उत्पन्न; पोषितः—पालित; यतः—जिससे; न—नहीं; तयोः—उन दोनों को; याति—मिलता है; निर्वेशम्—उत्थण होना; पित्रोः—माता-पिता के प्रति; मर्त्यः—मरणशील; शत—एक सौ (वर्ष); आयुषा—आयु से।

मनुष्य अपने शरीर से जीवन के सारे लक्ष्य प्राप्त कर सकता है और उसके माता-पिता ही हैं जो इस शरीर को जन्म देते और उसका पोषण करते हैं। अतः कोई भी मर्त्यप्राणी, एक सौ वर्ष के पूरे जीवन-काल तक उनकी सेवा करके भी, मातृ-पितृ ऋण से उत्थण नहीं हो सकता।

तात्पर्य : “आप दोनों तथा हम दोनों ने एक-दूसरे से वियोग के कारण कष्ट भोगा” कहने के बाद अब कृष्ण यह कहते हैं कि अपने माता-पिता को तुष्ट करने में असफल होने से उनका तथा बलराम का धर्म दूषित हुआ है।

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ।

वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; तयोः—उन दोनों का; आत्म-जः—पुत्र; कल्पः—समर्थ; आत्मना—अपने शारीरिक साधनों से; च—तथा; धनेन—सम्पत्ति से; च—भी; वृत्तिम्—जीविका; न दद्यात्—नहीं देती; तम्—उसको; प्रेत्य—मरने के बाद; स्व—अपना; मांसम्—मांस; खादयन्ति—खिलवाते हैं; हि—निस्सन्देह।

जो पुत्र समर्थ होते हुए भी अपने माता-पिता को अपने शारीरिक साधन तथा सम्पत्ति दिलाने में विफल रहता है, उसे मृत्यु के बाद अपना ही मांस खाने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

मातरं पितरं वृद्धं भार्या साध्वीं सुतमिशिशुम् ।

गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छसन्मृतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

मातरम्—माता को; पितरम्—तथा पिता को; वृद्धम्—बूढ़े; भार्याम्—पत्नी को; साध्वीम्—सती-साध्वी; सुतम्—बेटे को; शिशुम्—अल्पायु वाले; गुरुम्—गुरु को; विप्रम्—ब्राह्मण को; प्रपन्नम्—शरण में आये हुए को; च—तथा; कल्पः—समर्थ; अबिभ्रत्—पालन न करके; श्वसन्—श्वास लेता हुआ; मृतः—मरा हुआ।

जो व्यक्ति समर्थ होकर भी अपने बूढ़े माता-पिता, साध्वी-पत्नी, छोटे पुत्र या गुरु का भरण-पोषण करने से चूकता है या किसी ब्राह्मण या शरण में आये हुए की उपेक्षा करता है, वह जीवित होते हुए भी मरा हुआ माना जाता है।

तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ।

मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; नौ—हम दोनों का; अकल्पयोः—असमर्थ; कंसात्—कंस के कारण; नित्यम्—सदैव; उद्विग्न—चिन्तित; चेतसोः—मनों वाले; मोघम्—व्यर्थ ही; एते—ये; व्यतिक्रान्ताः—बिताया; दिवसाः—दिन; वाम्—आपको; अनर्चतोः—सम्मान न देकर।

इस तरह हमने इतने सारे दिन आपका समुचित सम्मान करने में असमर्थ होने के कारण व्यर्थ में ही गँवा दिये, क्योंकि हमारे मन सदैव कंस के भय से विचलित थे।

तात्पर्य : कृष्ण अपने पिता वसुदेव तथा माता देवकी को अपने तथा अपने भाई बलराम के प्रति सामान्य वात्सल्य-प्रेम में लौटा लाने का प्रयास करते हैं। एक सामान्य बालक कंस जैसे क्रूर एवं अत्याचारी राजा से भयभीत रहेगा और कृष्ण यहाँ पर ऐसे ही बालक की भूमिका अदा करते हैं। इस तरह वे वसुदेव तथा देवकी की वत्सलता तथा करुणा को जगाते हैं।

तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातनौ परतन्त्रयोः ।

अकुर्वतोर्वा शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; क्षन्तुम्—क्षमा करें; अर्हथः—आप चाहें तो; तात—हे पिता; मातः—हे माता; नौ—हम दोनों को; पर-तन्त्रयोः—अन्यों के अधीन; अकुर्वतोः—न करते हुए; वाम्—आपकी; शुश्रूषाम्—सेवा; क्लिष्टयोः—कष्ट पहुँचाया गया; दुर्हृदा—कठोर हृदय (कंस) द्वारा; भृशम्—अत्यधिक ।

हे पिता तथा माता, आप हम दोनों को आपकी सेवा न कर पाने के लिए क्षमा कर दें। हम स्वतंत्र नहीं थे और क्रूर कंस द्वारा अत्यधिक त्रस्त कर दिये गये थे।

तात्पर्य : संस्कृत व्याकरण के अनुसार परतन्त्रयोः तथा क्लिष्टयोः शब्द वसुदेव तथा देवकी के लिए भी आ सकते हैं। वास्तव में वसुदेव तथा देवकी भाग्य के अधीन थे और कंस के कार्यों से उद्विग्न रहते थे, जबकि कृष्ण सदैव परमेश्वर हैं।

श्रीशुक उवाच

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ।

मोहितावङ्गमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; माया—अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा; मनुष्यस्य—मनुष्य के रूप में प्रकट होने वाले; हरेः—भगवान् हरि का; विश्व—ब्रह्माण्ड का; आत्मनः—आत्मा; गिरा—शब्दों से; मोहितौ—मोहग्रस्त; अङ्गम्—गोद में; आरोप्य—उठाकर; परिष्वज्य—आलिंगन करके; आपतुः—अनुभव किया; मुदम्—हर्ष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार ब्रह्माण्ड के परमात्मा एवं अपनी अन्तरंगा भ्रामक शक्ति से मनुष्य-रूप में प्रकट होने वाले भगवान् हरि के वचनों से मोहित होकर उनके माता-पिता ने हर्षपूर्वक उन्हें अपनी गोद में उठाकर उनका आलिंगन किया।

सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ।

न किञ्चिदूचतू राजन्बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सिञ्चन्तौ—सिक्त करते हुए; अश्रु—आँसुओं की; धाराभिः—धाराओं से; स्नेह—प्रेममयी; पाशेन—रस्सी से; च—तथा; आवृतौ—घिरे; न—नहीं; किञ्चित्—कुछ भी; ऊचतुः—वे बोले; राजन्—हे राजा (परीक्षित); बाष्प—आँसुओं (से पूर्ण); कण्ठौ—गले; विमोहितौ—अवरुद्ध ।

भगवान् के ऊपर अश्रुओं की धारा दुलकाते हुए, स्नेह की रस्सी से बँधे उनके माता-पिता बोल न पाये। हे राजन्, वे भावविभोर थे और उनके गले अश्रुओं से अवरुद्ध हो चले थे।

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः ।

मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्मृपम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; आश्वास्य—आश्वासन देकर; पितरौ—माता-पिता को; भगवान्—भगवान् ने; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र; मातामहम्—अपने नाना को; तु—तथा; उग्रसेनम्—उग्रसेन को; यदूनाम्—यदुओं का; अकरोत्—बना दिया; नृपम्—राजा।

अपने माता-पिता को इस तरह सान्त्वना देकर तथा देवकी-पुत्र के रूप में प्रकट हुए, भगवान् ने अपने नाना उग्रसेन को यदुओं का राजा बना दिया।

आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ।

ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आह—उसने (कृष्ण ने) कहा; च—तथा; अस्मान्—हमको; महा-राज—हे महान् राजा; प्रजाः—आपकी प्रजा; च—भी; आज्ञप्तुम् अर्हसि—आदेश दें; ययाति—प्राचीन राजा ययाति द्वारा; शापात्—शाप से; यदुभिः—यदुओं के; न आसितव्यम्—नहीं बैठना चाहिए; नृप—शाही; आसने—सिंहासन पर।

भगवान् ने उनसे कहा : हे महाराज, हम आपकी प्रजा हैं, अतः आप हमें आदेश दें। दरअसल, ययाति के शाप के कारण कोई भी यदुवंशी राज-सिंहासन पर नहीं बैठ सकता।

तात्पर्य : उग्रसेन ने भगवान् से कहा होगा, “हे प्रभु! सिंहासन पर तो आपको बैठना चाहिए।” ऐसे कथन का अनुमान करते हुए ही भगवान् कृष्ण ने उग्रसेन से कहा होगा कि ययाति के पहले के शाप के कारण वैधानिक रूप से कोई यदुवंशी राजकुमार राज-सिंहासन पर नहीं बैठ सकता, अतः कृष्ण तथा बलराम उसके अयोग्य थे। वस्तुतः, उग्रसेन को भी यदुवंश का ही अंग माना जा सकता था किन्तु भगवान् के आदेश से वे राज-सिंहासन पर आसीन हो सकते थे। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य की भूमिका अदा करते हुए भगवान् इन लीलाओं में लगे हुए थे।

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः ।

बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; भृत्ये—सेवक रूप; उपासीने—सेवा में उपस्थित; भवतः—आपकी; विबुध—देवता; आदयः—इत्यादि; बलिम्—प्रशस्ति, भेंट; हरन्ति—लायेंगे; अवनताः—विनीत भाव से झुके हुए; किम् उत—तो फिर क्या कहा जाय; अन्ये—दूसरे; नर—मनुष्य का; अधिपाः—शासक।

चूँकि मैं आपके निजी सेवक के रूप में आपके पार्षदों के बीच उपस्थित हूँ अतः सारे देवता तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति आपको अभिवादन करने के लिए सिर झुकाते हुए आयेंगे। तो फिर मनुष्यों के शासकों के लिए क्या कहा जाय ?

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उग्रसेन को पुनः आश्वस्त करते हैं कि वे निर्भय होकर सिंहासन ग्रहण करें।

सर्वान्स्वान्ज्ञातिसम्बन्धान्दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् ।
यदुवृष्णयन्धकमधु दाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥
सभाजितान्समाश्रास्य विदेशावासकर्षितान् ।
न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सर्वान्—समस्त; स्वान्—अपने; ज्ञाति—परिवार के लोग; सम्बन्धान्—तथा अन्य सम्बन्धी; दिग्भ्यः—सभी दिशाओं से; कंस-भय—कंस के डर से; आकुलान्—विचलित; यदु-वृष्णि-अन्धक-मधु-दाशार्ह कुकुर-आदिकान्—यदुओं, वृष्णियों, अन्धकों, मधुओं, दाशार्हों, कुकुरों तथा अन्य को; सभाजितान्—समादरित; समाश्रास्य—आश्रासन देकर; विदेश—विदेशी क्षेत्रों में; आवास—रहते हुए; कर्षितान्—थकाये गये; न्यवासयत्—बसा दिया; स्व—अपने; गेहेषु—घरों में; वित्तैः—बहुमूल्य भेंटों सहित; सन्तर्प्य—सत्कार करके; विश्व—ब्रह्माण्ड का; कृत्—निर्माता।

तत्पश्चात् भगवान् अपने सारे नजदिकी परिवार वालों को तथा अन्य सम्बन्धियों को उन विविध स्थानों से वापस लाये जहाँ वे कंस के भय से भाग कर गये थे। उन्होंने यदुओं, वृष्णियों, अन्धकों, मधुओं, दाशार्हों, कुकुरों इत्यादि जाति-पक्ष वालों को सम्मानपूर्वक बुलवाया और उन्हें सान्त्वना भी दी क्योंकि वे विदेशी स्थानों में रहते-रहते थक चुके थे। तत्पश्चात् ब्रह्माण्ड के स्रष्टा भगवान् कृष्ण ने उन्हें उनके अपने घरों में फिर से बसाया और बहुमूल्य भेंटों से उनका सत्कार किया।

कृष्णसङ्कर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ।
गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णारामगतज्वराः ॥ १७ ॥
वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ।
नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-सङ्कर्षण—कृष्ण तथा बलराम के; भुजैः—बाहुओं से; गुप्ताः—सुरक्षित; लब्ध—प्राप्त करके; मनः-रथाः—अपनी इच्छाएँ; गृहेषु—अपने घरों में; रेमिरे—भोग किया; सिद्धाः—पूर्णाकाम; कृष्ण-राम—कृष्ण तथा बलराम के कारण; गत—दूर हो गया; ज्वराः—ज्वर (भौतिक जीवन का); वीक्षन्तः—देखने से; अहः अहः—दिन-प्रतिदिन; प्रीताः—प्रिय; मुकुन्द—कृष्ण का; वदन—मुख; अम्बुजम्—कमल सदृश; नित्यम्—सदैव; प्रमुदितम्—प्रफुल्लित; श्रीमत्—सुन्दर; स-दय—दयालु; स्मित—मन्द हास युक्त; वीक्षणम्—चितवनों से।

इन वंशों के लोगों ने भगवान् कृष्ण तथा संकर्षण की बाहुओं का संरक्षण पाकर यह अनुभव किया कि उनकी सारी इच्छाएँ पूरी हो गई। इस तरह वे अपने परिवारों के साथ अपने

घरों में रहते हुए पूर्ण सुख का भोग करने लगे। कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति से अब उन्हें सांसारिक ज्वर नहीं सताता था। ये प्रेमी भक्त प्रतिदिन मुकुन्द के कमल सदृश नित्य प्रफुल्लित मुख को देख सकते थे, जो सुन्दर दयामय मन्द हास युक्त चितवनों से विभूषित था।

तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः ।

पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (मथुरा में); प्रवयसः—गुरुजन; अपि—भी; आसन्—थे; युवानः—युवक; अति—अत्यधिक; बल—शक्ति; ओजसः—तथा ओज से युक्त; पिबन्तः—पीते हुए; अक्षैः—अपने अपने नेत्रों से; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; मुख-अम्बुज—कमल सदृश मुख का; सुधाम्—अमृत; मुहुः—बारम्बार।

यहाँ तक कि उस नगरी के अत्यन्त वृद्धजन भी शक्ति तथा ओज से पूर्ण युवा लगने लगे क्योंकि वे अपनी आँखों से निरन्तर भगवान् मुकुन्द के कमल-मुख का अमृत-पान करते थे।

अथ नन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः ।

सङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; नन्दम्—नन्द महाराज के पास; समासाद्य—पहुँचकर; भगवान्—भगवान्; देवकी-सुतः—देवकी-पुत्र, कृष्ण; सङ्कर्षणः—बलराम; च—तथा; राज-इन्द्र—हे महान् राजा (परीक्षित); परिष्वज्य—उसका आलिंगन करके; इदम्—यह; ऊचतुः—उन्होंने कहा।

तत्पश्चात्, हे महान् राजा परीक्षित, देवकी-पुत्र भगवान् कृष्ण भगवान् बलराम के साथ नन्द महाराज के पास पहुँचे। दोनों विभुओं ने उनका आलिंगन किया और उनसे इस प्रकार बोले।

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ।

पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पितः—हे पिताश्री; युवाभ्याम्—आप दोनों के द्वारा; स्निग्धाभ्याम्—स्नेहिल; पोषितौ—पालित-पोषित; लालितौ—दुलराये; भृशम्—भलीभाँति; पित्रोः—माता-पिता के लिए; अभ्यधिका—से बढ़कर; प्रीतिः—प्रेम; आत्मजेषु—अपनी सन्तानों के लिए; आत्मनः—अपनी अपेक्षा; अपि—भी; हि—निस्सन्देह।

[कृष्ण और बलराम ने कहा] : हे पिताश्री, आप तथा माता यशोदा ने हम दोनों को बड़े स्नेह से पाला-पोसा है और हमारी इतनी अधिक परवाह की है। निस्सन्देह माता-पिता अपनी सन्तानों को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं।

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।
शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; पिता—पिता; सा—वह; च—तथा; जननी—माता; यौ—जो; पुष्णीताम्—पालन-पोषण करते हैं; स्व—अपने;
पुत्र—पुत्रों की; वत्—तरह; शिशून्—बालकों को; बन्धुभिः—अपने परिवार के द्वारा; उत्सृष्टान्—परित्यक्त; अकल्पैः—
असमर्थ; पोष—पोषण करने के लिए; रक्षणे—तथा रक्षा करने के लिए।

वे ही असली माता-पिता हैं, जो पालन-पोषण और देख-रेख करने में असमर्थ सम्बन्धियों
द्वारा परित्यक्त बालकों की देख-भाल अपने ही पुत्रों की तरह करते हैं।

यात यूयं व्रजन्तात वयं च स्नेहदुःखितान् ।
ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहदां सुखम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यात—कृपया जाइये; यूयम्—तुम सब (ग्वाले); व्रजम्—व्रज को; तात—हे पिता; वयम्—हम; च—तथा; स्नेह—स्नेह के
कारण; दुःखितान्—दुखी; ज्ञातीन्—सम्बन्धियों को; वः—तुमको; द्रष्टुम्—देखने के लिए; एष्यामः—आयेंगे; विधाय—प्रदान
करके; सुहदाम्—आपके मित्रों को; सुखम्—सुख।

हे पिताश्री, अब आप सब व्रज लौट जाँय। हम आपके शुभचिन्तक मित्रों को कुछ सुख दे
लेने के बाद तुरन्त ही आपको तथा अपने उन प्रिय सम्बन्धियों को देखने के लिए आयेंगे जो
हमारे वियोग से दुखी हैं।

तात्पर्य : यहाँ भगवान् मथुरा के अपने प्रिय भक्तों—वसुदेव, देवकी तथा यदुवंश के अन्य
सदस्यों—को संतुष्ट करने की इच्छा व्यक्त करते हैं क्योंकि वे लोग वृन्दावन में उनके निवासकाल से
दीर्घ काल से विलग हो चुके हैं।

एवं सान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः ।
वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सान्त्वय्य—सान्त्वना देकर; भगवान्—भगवान्; नन्दम्—राजा नन्द को; स-व्रजम्—व्रज के अन्य लोगों
सहित; अच्युतः—अच्युत भगवान्; वासः—वस्त्र समेत; अलङ्कार—आभूषण; कुप्य—धातुओं के बने पात्र; आद्यैः—इत्यादि
से; अर्हयाम् आस—उनका सत्कार किया; स-आदरम्—आदरपूर्वक।

इस प्रकार नन्द महाराज तथा व्रज के अन्य लोगों को सान्त्वना देकर अच्युत भगवान् ने उन
सबों का वस्त्र, आभूषण, घरेलू-पात्र इत्यादि उपहारों से आदर समेत सत्कार किया।

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ।

पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्ब्रजं ययौ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—सम्बोधित; तौ—दोनों को; परिष्वज्य—आलिंगन करके; नन्दः—नन्द महाराज; प्रणय—स्नेहपूर्वक; विह्वलः—भावविभोर; पूरयन्—भरकर; अश्रुभिः—आँसुओं से; नेत्रे—अपने नेत्रों में; सह—साथ; गोपैः—ग्वालों के; ब्रजम्—ब्रज को; ययौ—चला गया।

कृष्ण के शब्द सुनकर नन्द महाराज भावविह्वल हो गये और अश्रूपूरित नेत्रों से उन्होंने दोनों भाइयों को गले लगाया। तत्पश्चात् वे ग्वालजनों के साथ ब्रज लौट गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक का विस्तृत तात्पर्य लिखा है, जिसमें कृष्ण की लीलाओं के इस अंश का विस्तृत विश्लेषण है। जिस प्रकार सोने की शुद्धता जानने के लिए उसे अग्नि में तपाया जाता है उसी तरह भगवान् ने उनके परम-प्रेम को प्रदर्शित करने की दृष्टि से वृन्दावन निवासी अपने प्रिय भक्तों को अपने वियोग की अग्नि में डाल दिया। आचार्य विश्वनाथ की टीका का यही सार है।

अथ शूरसुतो राजन्युत्रयोः समकारयत् ।

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्विद्वजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; शूर-सुतः—शूरसेन के पुत्र (वसुदेव) ने; राजन्—हे राजा (परीक्षित); पुत्रयोः—दोनों पुत्रों के; समकारयत्—सम्पन्न कराया; पुरोधसा—पुरोहित द्वारा; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों द्वारा; च—तथा; यथा-वत्—उचित ढंग से; द्विज-संस्कृतिम्—ब्राह्मण की दीक्षा।

हे राजन्, तब शूरसेन-पुत्र वसुदेव ने अपने दोनों पुत्रों का द्विज-संस्कार कराने के लिए एक पुरोहित तथा अन्य ब्राह्मणों की व्यवस्था की।

तेभ्योऽदाद्वक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलङ्कृताः ।

स्वलङ्कृतेभ्यः सम्पूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उनको (ब्राह्मणों को); अदात्—दिया; दक्षिणाः—दक्षिणा, भेंट; गावः—गौवें; रुक्म—सोने की; मालाः—गले का हार; सु—सुन्दर; अलङ्कृताः—सज्जित; सु-अलङ्कृतेभ्यः—अच्छे आभूषण पहने हुआ (ब्राह्मणों) को; सम्पूज्य—पूजा करके; स—सहित; वत्साः—बछड़े; क्षौम—रेशमी; मालिनीः—मालाएँ धारण किये।

वसुदेव ने इन ब्राह्मणों की पूजा करते हुए तथा उन्हें सुन्दर आभूषण और सुन्दर आभूषणों से सजी बछड़ों युक्त गौवें भेंट करके सम्मानित किया। ये सभी गौवें सुनहरे हार तथा रेशमी मालाएँ धारण किये थीं।

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ।
ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हताः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो (गौवें); कृष्ण-राम—कृष्ण तथा बलराम के; जन्मर्क्षे—जन्मदिन पर; मनः—मन में; दत्ताः—दान में दी गई; महा-मतिः—वदान्य (वसुदेव); ताः—उन्हें; च—तथा; आददात्—दिया; अनुस्मृत्य—स्मरण करके; कंसेन—कंस द्वारा; अधर्मतः—अधर्मपूर्वक; हतः—छीन ली गई।

तब महात्मा वसुदेव को कृष्ण तथा बलराम के जन्म के अवसर पर मन ही मन दान की गई गौवों का स्मरण हो आया। कंस ने वे गाएँ चुरा ली थीं किन्तु अब वसुदेव ने उन्हें फिर से प्राप्त किया था और उन्हें भी दान में दे डाला।

तात्पर्य : कृष्ण के आविर्भाव के समय वसुदेव कंस द्वारा बन्दी बनाकर रखे गये थे और कंस ने उनकी सारी गौवें चुरा ली थीं। फिर भी कृष्ण के जन्म के समय वसुदेव इतने हर्षित थे कि उन्होंने मन ही मन अपनी दस हजार गौवें ब्राह्मणों को दान में दे दी थीं।

अब कंस की मृत्यु हो जाने पर वसुदेव ने वे सारी गौवें मृत राजा के गौवों के झुंड से वापस मँगा लीं और धार्मिक नियमों के अनुसार उन दस हजार गौवों को सुपात्र ब्राह्मणों को दान में दे दिया।

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; लब्ध—प्राप्त करके; संस्कारौ—दीक्षा (कृष्ण तथा बलराम की); द्विजत्वम्—द्विज बनने की; प्राप्य—प्राप्त करके; सु-व्रतौ—अपने व्रत में निष्ठावान; गर्गात्—गर्ग मुनि से; यदु-कुल—यदुवंश के; आचार्यात्—आध्यात्मिक गुरु से; गायत्रम्—ब्रह्मचर्य का; व्रतम्—व्रत; आस्थितौ—धारण किया।

दीक्षा द्वारा द्विजत्व प्राप्त कर लेने के बाद व्रतनिष्ठ दोनों भाइयों ने यदुवंश के गुरु गर्ग मुनि से ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर दोनों ने ही गायत्रं व्रतम् की व्याख्या ब्रह्मचर्य व्रत के रूप में की है। कृष्ण तथा बलराम आत्म-साक्षात्कार के पथ में पूर्ण छात्र की भूमिका अदा कर रहे थे। निस्सन्देह आज के पतित युग में छात्र-जीवन जंगली पाशविक व्यापार बन गया है, जो अवैध यौन तथा नशीली दवाओं से परिपूर्ण है।

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्यसिद्धामलं ज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥
अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजगमतुः ।
काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

प्रभवौ—उद्गम स्वरूप; सर्व—समस्त विविधताओं के; विद्यानाम्—ज्ञान के; सर्व-ज्ञौ—सर्वज्ञाता; जगत्-ईश्वरौ—ब्रह्माण्ड के स्वामी; न—नहीं; अन्य—अन्य किसी स्रोत से; सिद्ध—प्राप्त; अमलम्—विशुद्ध; ज्ञानम्—ज्ञान; गूहमानौ—छिपाते हुए; नर—मनुष्य की तरह; ईहितैः—अपने कार्यों से; अथ उ—तब; गुरु—गुरु की; कुले—पाठशाला में; वासम्—आवास; इच्छन्तौ—चाहते हुए; उपजगत्—पहुँचे; काश्यम्—काशी (वाराणसी) के वासी; सान्दीपनिम् नाम—सान्दीपनि नामक; हि—निस्सन्देह; अवन्ति-पुर—अवन्ती नगरी (वर्तमान उज्जैन) में; वासिनम्—रह रहे।

अपने मनुष्य जैसे कार्यों से अपने पूर्णज्ञान को भीतर ही भीतर रखते हुए, ब्रह्माण्ड के इन दो सर्वज्ञ भगवानों ने, ज्ञान की समस्त शाखाओं के उद्गम होते हुए भी, गुरुकुल में जाकर रहने की इच्छा व्यक्त की। इस तरह वे काशीवासी सान्दीपनि मुनि के पास पहुँचे जो अवन्ती नगरी में रह रहे थे।

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवाहतौ ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यथा—विधिपूर्वक; उपसाद्य—प्राप्त करके; तौ—वे दोनों; दान्तौ—आत्मसंयमी; गुरौ—गुरु के लिए; वृत्तिम्—सेवा; अनिन्दिताम्—निन्दारहित; ग्राहयन्तौ—दूसरों को भी ग्रहण कराते हुए; उपेतौ—सेवा के लिए पहुँचे; स्म—निस्सन्देह; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; देवम्—भगवान् की; इव—मानो; आहतौ—सम्मानित (गुरु द्वारा)।

सान्दीपनि इन दोनों आत्मसंयमी शिष्यों के प्रति बहुत ही उच्च विचार रखते थे जिन्हें उन्होंने अकस्मात प्राप्त किया था। दोनों ने गुरु की साक्षात् भगवान् जैसी ही भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए अन्यो के समक्ष अनिन्द्य उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस तरह आध्यात्मिक गुरु की पूजा की जाती है।

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तयोः—दोनों का; द्विज-वरः—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ (सान्दीपनि); तुष्टः—सन्तुष्ट; शुद्ध—शुद्ध; भाव—प्रेम से; अनुवृत्तिभिः—विनीत कार्यों से; प्रोवाच—बतलाया; वेदान्—वेद; अखिलान्—समस्त; स—सहित; अङ्ग—छहो वेदांग; उपनिषदः—तथा उपनिषदों; गुरुः—गुरु ने।

ब्राह्मण-श्रेष्ठ गुरु सान्दीपनि उनके विनीत आचरण से सन्तुष्ट थे अतः उन्होंने दोनों को सारे

वेद छह वेदांगों सहित तथा उपनिषद् पढ़ाये ।

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मात्र्यायपथांस्तथा ।

तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

स-रहस्यम्—गुह्य अंश समेत; धनुः-वेदम्—धनुर्विद्या; धर्मान्—मानवीय विधि के सिद्धान्त; न्याय—तर्क की; पथान्—विधियाँ; तथा—भी; तथा च—और इसी तरह से; आन्वीक्षिकीम्—दार्शनिक वाद-विवाद की; विद्याम्—ज्ञान की शाखा; राज-नीतिम्—राजनीति शास्त्र; च—तथा; षट्-विधाम्—छह पक्षों में।

उन्होंने दोनों को रहस्यों सहित धनुर्वेद की शिक्षा दी। साथ ही मानक विधि ग्रंथ, तर्क तथा दर्शन विषयक वाद-विवाद की विधियाँ और राजनीति शास्त्र के छह भेदों की भी शिक्षा दी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर गोस्वामी ने व्याख्या की है कि धनुर्वेद के गुह्य अंश में उपयुक्त मंत्र तथा युद्ध के अधिष्ठाता देवों का ज्ञान निहित है। धर्मान् से मनुसंहिता तथा अन्य मानक विधि-ग्रंथों (धर्मशास्त्रों) का बोध होता है। न्यायपथान् सूचक है कर्ममीमांसा तथा अन्य ऐसे ही वादों का। आन्वीक्षिकीम् तर्क-विद्या है। राजनीति के छह भेद हैं (१) सन्धि—शान्ति स्थापित करना (२) विग्रह—युद्ध (३) यान—कूच करना (४) आसन—दृढ़तापूर्वक बैठे रहना (५) द्वैध—सेना का विभाजन (६) संशय—अधिक शक्तिशाली राजा का संरक्षण लेना।

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ।

सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ।

गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सर्वम्—हर बात; नर-वर—प्रथम श्रेणी के पुरुषों की; श्रेष्ठौ—श्रेष्ठ; सर्व—सभी; विद्या—ज्ञान की शाखाओं के; प्रवर्तकौ—शुभारम्भ करने वाले; सकृत्—एक बार; निगद—बतलाया जाकर; मात्रेण—केवल; तौ—दोनों; सञ्जगृहतुः—आत्मसात् कर लेते; नृप—हे राजा (परीक्षित); अहः—दिन; रात्रैः—तथा रातों में; चतुःषष्ट्या—चौंसठ; संयत्तौ—ध्यानमग्न रहकर; तावतीः—उतनी ही; कलाः—कलाएँ; गुरु-दक्षिणया—गुरु-दक्षिणा से; आचार्यम्—अपने गुरु को; छन्दयाम् आसतुः—प्रसन्न किया; नृप—हे राजा।

हे राजन, पुरुष-श्रेष्ठ कृष्ण तथा बलराम स्वयं ही सभी प्रकार की विद्याओं के आदि-प्रवर्तक होने के कारण किसी भी विषय की व्याख्या को एक ही बार में सुनकर तुरन्त आत्मसात् कर सकते थे। इस तरह उन्होंने एकाग्र चित्त से चौंसठ कलाओं तथा चातुरियों को उतने ही दिनों तथा रातों में सीख लिया। तत्पश्चात् हे राजन, उन्होंने गुरु-दक्षिणा देकर अपने गुरु को प्रसन्न

किया।

तात्पर्य : निम्नलिखित सूची में वे ६४ कलाएँ दी जा रही हैं, जिन्हें कृष्ण तथा बलराम ने ६४ दिनों में भली-भाँति सीख लिया था। अधिक जानकारी के लिए देखें श्रील प्रभुपाद कृत *भगवान् कृष्ण।*

भगवान् ने (१) *गीतम्*—गायन (२) *वाद्यम्*—वाद्य यंत्रों का वादन (३) *नृत्यम्*—नाचना (४) *नाट्यम्*—नाटक (५) *आलेख्यम्*—चित्रकारी (६) *विशेषकच्छेद्यम्*—मुख तथा शरीर को रंगीन उबटनों तथा प्रसाधनों से रँगना (७) *तण्डुल-कुसुम-बलि-विकाराः*—फर्श पर चावल तथा फूलों से शुभ आरेख बनाना (८) *पुष्पास्तरणम्*—फूलों की शय्या बनाना (९) *दशन-वसनांग-रागाः*—दाँत, कपड़े तथा अंगों को रँगना (१०) *मणि-भूमिका-कर्म*—फर्श में मणियाँ जड़ना (११) *शय्यारचनाम्*—सेज तैयार करना (१२) *उदकवाद्यम्*—जलतरंग वाद्य (१३) *उदकघाटः*—जल उछालना (१४) *चित्र-योगाः*—रंगों को मिलाना (१५) *माल्यग्रथनविकल्पाः*—मालाएँ तैयार करना (१६) *शेखरापीठ-योजनम्*—सिर पर मुकुट रखना (१७) *नेपथ्य-योगाः*—सजावट कक्ष में वस्त्र पहनाना (१८) *कर्णपत्रभंगाः*—कान के लटकते हिस्से (पत्तों) को सजाना (१९) *सुगन्धयुक्तिः*—सुगन्धित द्रव्य लगाना (२०) *भूषणयोजनम्*—गहनों से सजाना (२१) *ऐन्द्रजालम्*—जादूगरी (२२) *कौचुमारयोगाः*—बनावटी वेश बनाने की कला (२३) *हस्तलाघवम्*—हाथ की सफाई (२४) *चित्र-शाकापूप-भक्ष्य-विकार-क्रियाः*—तरह-तरह की रोटियाँ, सलाद, केक तथा अन्य प्रकार के स्वादिष्ट भोजन तैयार करना (२५) *पानक-रस-रागासव-योजनम्*—विविध स्वादिष्ट पेयों को तैयार करना तथा पेयों में लाल रंग मिलाना (२६) *सूचीवायकर्म*—सिलने-बुनने का कार्य (२७) *सूत्रक्रीडा*—डोरे से चलाई जाने वाली कठपुतलियाँ नचाना (२८) *वीणाडमरुक वाद्यानि*—वीणा तथा डमरू बजाना (२९) *प्रहेलिका-प्रतिमाला*—पहेली बुझाना तथा अन्ताक्षरी योजना (३०) *दुर्वचकयोगाः*—गूढ़ प्रश्न पूछना (३१) *पुस्तकवाचनम्*—पुस्तक बाँचना (३२) *नाटिकाख्यायिका दर्शनम्*—छोटे नाटकों का अभिनय तथा आख्यायिकाएँ लिखना सीखा।

इनके अतिरिक्त कृष्ण तथा बलराम ने (३३) *काव्यसमस्यापूरणम्*—समस्यापूर्ति (३४) *पट्टिका-वेत्र-बाण-विकल्पाः*—कपड़े की पट्टी तथा छड़ी से बाण बनाना (३५) *तर्कु-कर्म*—तकली कातना (३६) *तक्षणम्*—बढ़ईगिरी (३७) *वास्तुविद्या*—वास्तु शिल्प (३८) *रौप्य-रत्न-परीक्षा*—चाँदी तथा

रत्नों की परीक्षा करना (३९) धातुवादः—धातुकर्म विज्ञान (४०) मणि-राग-ज्ञानम्—विविध रंगों से मणियों को रँगना (४१) आकर-ज्ञानम्—खनिज विज्ञान (४२) वृक्षायुर्वेद योगाः—वनस्पति द्वारा चिकित्सा (४३) मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः—मेढे, मुर्गे तथा बटेर लड़ाने का प्रशिक्षण देना (४४) शुक-सारिका प्रलापनम्—तोता-मैना को बोलना तथा मनुष्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना सिखाना (४५) उत्सादनम्—लेपों द्वारा घावों का उपचार (४६) केशमार्जनकौशलम्—केश-सज्जा (४७) अक्षरमुष्टिका कथनम्—बिना देखे बताना कि पुस्तक में क्या लिखा है या कि दूसरे की मुट्टी में क्या छिपा है (४८) म्लेच्छितकुतर्कविकल्पाः—बर्बर या विदेशी कूट-नीति का जानना (४९) देशभाषा ज्ञानम्—प्रान्तीय बोलियों का ज्ञान (५०) पुष्पशकटिकानिर्मिति ज्ञानम्—फूलों से खिलौना-खेलगाड़ी बनाने की कला (५१) यन्त्रमात्रिका—जादू के वर्ग, सभी दिशाओं में एक ही जोड़ वाली संख्याओं का तरतीबवार रखना (५२) धारणमात्रिका—ताबीज का प्रयोग (५३) संवाच्यम्—वार्तालाप (५४) मानसीकाव्य क्रिया—मन में छंद बनाना (५५) क्रिया विकल्पाः—कोई साहित्यिक कृति या औषधि उपचार का आयोजन (५६) छलितक योगाः—मंदिर बनाना (५७) अभिधानकोषच्छन्दोज्ञानम्—शब्दकोश तथा छन्दों का ज्ञान (५८) वस्त्रगोपनम्—वस्त्रों को छिपाने या भेस बदलने की विद्या (५९) द्यूतविशेषम्—जुआ खेलने के विविध रूपों का ज्ञान (६०) आकर्ष क्रीडा—चौसर का खेल (६१) बालक-क्रीडनकम्—बच्चों के खिलौनों से खेलना (६२) वैनायिकी विद्या—योगशक्ति द्वारा अनुशासन (मंत्र विद्या) (६३) वैजयिकी विद्या—विजय प्राप्त कराने की विद्या (६४) वैतालिकी विद्या—प्रातःकाल संगीत द्वारा स्वामी को जगाने की कलाएँ भी सीखीं।

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं

संलोक्य राजन्नतिमानुसीं मतिम् ।

सम्मन्त्र्य पत्या स महार्णवे मृतं

बालं प्रभासे वरयां बभूव ह ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

द्विजः—विद्वान् ब्राह्मण; तयोः—उन दोनों की; तम्—उस; महिमानम्—महानता को; अद्भुतम्—अद्भुत; संलोक्य—भली-भाँति देखकर; राजन्—हे राजा; अति-मानुषीम्—मनुष्य की क्षमता से परे; मतिम्—बुद्धि; सम्मन्त्र्य—परामर्श करके; पत्या—अपनी पत्नी से; सः—उसने; महा-अर्णवे—महासागर में; मृतम्—मरे हुए; बालम्—अपने छोटे से पुत्र को; प्रभासे—प्रभास नामक पवित्र स्थान में; वरयाम् बभूव ह—चुना।

हे राजन्, विद्वान् ब्राह्मण सान्दीपनि ने दोनों विभुओं के यशस्वी तथा अद्भुत गुणों एवं उनकी अति मानवीय बुद्धि के बारे में ध्यानपूर्वक विचार किया। तत्पश्चात् अपनी पत्नी से परामर्श करके उन्होंने गुरु-दक्षिणा के रूप में अपने नन्हे पुत्र की वापसी को चुना जो प्रभास क्षेत्र के समुद्र में मर चुका था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस बालक को शंखासुर ने तब पकड़ा था, जब वह महाशिव क्षेत्र में खेल रहा था।

तेथेत्यथारुह्य महारथौ रथं

प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ।

वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं

सिन्धुर्विदित्वाहर्नमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तथा—ऐसा ही हो, बहुत अच्छा; इति—ऐसा कहकर; अथ—तब; आरुह्य—चढ़कर; महा-रथौ—दो महारथी; रथम्—रथ पर; प्रभासम्—प्रभास तीर्थ; आसाद्य—पहुँचकर; दुरन्त—असीम; विक्रमौ—पराक्रम वाले; वेलाम्—समुद्र तट तक; उपव्रज्य—चलकर; निषीदतुः—बैठ गये; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; सिन्धुः—सागर (का अधिष्ठाता देव); विदित्वा—पहचान कर; अर्हणम्—सादर भेंट; आहरत्—लाया; तयोः—दोनों के लिए।

असीम पराक्रम वाले दोनों महारथियों ने उत्तर दिया, “बहुत अच्छा” और तुरन्त ही अपने रथ पर सवार होकर प्रभास के लिए खाना हो गये। जब वे उस स्थान पर पहुँचे तो वे समुद्र तट तक पैदल गये और वहाँ बैठ गये। क्षण-भर में समुद्र का देवता उन्हें भगवान् के रूप में पहचान कर श्रद्धा-रूप में भेंट लेकर उनके निकट आया।

तात्पर्य : कभी कभी पाश्चात्य विद्वान् सोचते हैं कि प्राचीन ज्ञान-ग्रंथों में समुद्र के देवता, सूर्य के देवता इत्यादि जो सन्दर्भ आते हैं, वे सोचने की बहुत ही आदिम एवं पौराणिक शैली के द्योतक हैं। कभी कभी वे कहते हैं कि आदिम मनुष्य सोचता है कि समुद्र देवता है या कि सूर्य तथा चन्द्रमा देवता हैं। वास्तव में इस श्लोक में आगत सिन्धु शब्द, जिसका अर्थ “सागर” है, ऐसे व्यक्ति को सूचित करता है, जो भौतिक प्रकृति के उस पक्ष पर शासन चलाता है।

हम कई आधुनिक उदाहरण दे सकते हैं। मान लीजिए कि संयुक्त राष्ट्र में संयुक्त राज्य “हाँ” मतदान करता है और सोवियत संघ “न।” किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाता कि देश या इमारत ने मतदान किया। हमारा अभिप्राय होता है कि राजनीतिक तथा भौगोलिक सत्ता का प्रतिनिधित्व

करने वाला विशेष व्यक्ति मतदान करता है। फिर भी समाचार-पत्र तो इतना ही कहेंगे, “संयुक्त राज्य ने मतदान किया, निर्णय किया इत्यादि” और हर एक को पता होता है कि इसका क्या अर्थ है।

इसी तरह व्यापार में हम कह सकते हैं, “एक बड़े समूह ने छोटी कम्पनी को निगल लिया।” इससे हमारा अभिप्राय कदापि नहीं होता कि इमारत, कार्यालय उपकरण इत्यादि ने कर्मियों तथा कार्यालय उपकरणों समेत दूसरी इमारत को निगल लिया। हमारा अभिप्राय यही होता है कि शक्तिप्रदत्त अधिकारी ने अपनी सत्ता की ओर से कोई विशेष कार्य किया है।

दुर्भाग्यवश आधुनिक विद्वान अपने प्रिय वादों की पुष्टि करने के लिए उत्सुक रहते हैं कि प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान आदिम, पौराणिक है और अधिकांशतया सोचने की अपनी अधिक आधुनिक विधियों द्वारा उच्छेदित होता है। किन्तु कृष्णभावनामृत के प्रकाश में इस पर पुनः विचार किये जाने की आवश्यकता है।

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ।

योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; आह—कहा; भगवान्—भगवान् ने; आशु—तुरन्त; गुरु—मेरे गुरु का; पुत्रः—पुत्र; प्रदीयताम्—प्रस्तुत किया जाय; यः—जो; असौ—वह; इह—इस स्थान पर; त्वया—तुम्हारे द्वारा; ग्रस्तः—पकड़ा गया; बालकः—बालक; महता—बलशाली; ऊर्मिणा—तुम्हारी लहरों द्वारा।

भगवान् कृष्ण ने समुद्र के स्वामी से कहा, “मेरे गुरु के पुत्र को तुरन्त उपस्थित किया जाये जिसे तुमने अपनी बलशाली लहरों से यहाँ जकड़ रखा है।”

श्रीसमुद्र उवाच

न चाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।

अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-समुद्रः उवाच—साक्षात् समुद्र ने कहा; न—नहीं; च—तथा; अहार्षम्—उसे ले गया; अहम्—मैं; देव—हे प्रभु; दैत्यः—दित वंशज; पञ्चजनः—पञ्चजन नामक; महान्—शक्तिशाली; अन्तः—भीतर; जल—जल के; चरः—चलने वाला; कृष्ण—हे कृष्ण; शङ्ख—शंख का; रूप—स्वरूप; धरः—धारण करके; असुरः—असुर।

समुद्र ने उत्तर दिया, “हे भगवान् कृष्ण, उसका हरण मैंने नहीं अपितु दिति के वंशज पञ्चजन नामक एक दैत्य ने किया है, जो शंख के रूप में जल में विचरण करता रहता है।”

तात्पर्य : स्पष्ट है कि पञ्चजन अत्यन्त शक्तिशाली होने के कारण समुद्र के वश में नहीं था अन्यथा

समुद्र ने ऐसे अवैध कार्य को रोक दिया होता ।

आस्ते तेनाहतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ।
जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

आस्ते—वह वहाँ है; तेन—उसके (पञ्चजन) द्वारा; आहतः—हरण किया गया; नूनम्—निस्सन्देह; तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; सत्वरम्—तेजी से; प्रभुः—प्रभु; जलम्—जल में; आविश्य—घुसकर; तम्—उसदैत्य को; हत्वा—मारकर; न अपश्यत्—नहीं देखा; उदरे—उसके पेट में; अर्भकम्—बालक को ।

सागर ने कहा, “निस्सन्देह उसी दैत्य ने उस बालक को चुरा लिया है।” यह सुनकर भगवान्

कृष्ण समुद्र में घुस गये, पञ्चजन को ढूँढ़ लिया और उसको मार डाला । किन्तु भगवान् को उस दैत्य के पेट के भीतर वह बालक नहीं मिला ।

तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत् ।
ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ।
गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ ४२ ॥
शङ्खनिर्हादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ।
तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ ४३ ॥
उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।
लीलामनुष्ययोर्विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस (दैत्य) के; अङ्ग—शरीर से; प्रभवम्—उत्पन्न; शङ्खम्—शंख को; आदाय—लेकर; रथम्—रथ पर; आगमत्—लौट आये; ततः—तब; संयमनीम् नाम—संयमनी नामक; यमस्य—यमराज की; दयिताम्—प्रिय; पुरीम्—नगरी में; गत्वा—जाकर; जन-अर्दनः—समस्त पुरुषों के धाम, भगवान् कृष्ण; शङ्खम्—शंख को; प्रदध्मौ—जोर से बजाया; स—सहित; हल-आयुधः—बलराम जिनका आयुध हल है; शङ्ख—शंख की; निर्हादम्—गूँज; आकर्ण्य—सुनकर; प्रजा—जन्म लेने वाले का; संयमनः—संयमनी नामक; यमः—यमराज; तयोः—दोनों की; सपर्याम्—पूजा; महतीम्—विशद; चक्रे—सम्पन्न की; भक्ति—भक्ति के साथ; उपबृंहिताम्—उफनते; उवाच—कहा; अवनतः—झुककर; कृष्णम्—कृष्ण को; सर्व—समस्त; भूत—जीवित प्राणी; आशय—मन; आलयम्—आवास; लीला—आपकी लीला के रूप में; मनुष्ययोः—मनुष्यों के रूप में प्रकट हुए; विष्णो—हे विष्णु; युवयोः—तुम दोनों के लिए; करवाम—करूँ; किम्—क्या ।

भगवान् जनार्दन ने वह शंख ले लिया जो उस दैत्य के शरीर के चारों ओर उगा हुआ था और रथ पर वापस चले गये । इसके पश्चात् वे यमराज की प्रिय राजधानी संयमनी गये । भगवान् बलराम के साथ वहाँ पहुँचकर उन्होंने तेजी से अपना शंख बजाया और उस गूँजती हुई आवाज को सुनते ही बद्धजीवों को नियंत्रण में रखने वाला यमराज वहाँ पहुँचा । यमराज ने दोनों विभुओं की अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और तब प्रत्येक हृदय में वास करने वाले भगवान् कृष्ण से

कहा, “हे भगवान् विष्णु, मैं आप के लिए तथा भगवान् बलराम के लिए जो सामान्य मनुष्यों की भूमिका अदा कर रहे हैं, क्या करूँ?”

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण ने पञ्चजन से जो शंख लिया वह पाञ्चजन्य कहलाता है और यह वही शंख है, जिसे *भगवद्गीता* के शुभारम्भ में उन्होंने बजाया। आचार्यों के अनुसार पञ्चजन उसी तरह दैत्य बना जिस तरह जय तथा विजय बने थे। दूसरे शब्दों में, यद्यपि वह दैत्य रूप में प्रकट हुआ था किन्तु वास्तव में वह था भगवद्भक्त। *स्कन्द पुराण* के *अवन्ति खण्ड* में भगवान् कृष्ण द्वारा अपना शंख बजाने पर जो चमत्कार हुआ उसका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

असिपत्रवनं नाम शीर्णपत्रमजायत ।

रौरवं नाम नरकमरौरवमभूत्तदा ॥

अभैरवं भैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचकम् ॥

“असिपत्रवन नामक नर्क के वृक्षों की नुकीली तलवार जैसी पत्तियाँ गिर गईं और रौरव नामक नर्क रुरु पशुओं से शून्य हो गया। भैरव नर्क की भयानकता जाती रही और कुम्भीपाक नर्क में भोजन बनना बन्द हो गया।”

स्कन्द पुराण में आगे वर्णन है कि—

पापक्षयात् ततः सर्वे विमुक्ता नारका नराः पदमव्ययमासाद्य ।

“उनके पापपूर्ण कर्मफल समूल नष्ट हो गये, नर्क के सारे वासियों को मुक्ति मिल गई और वे वैकुण्ठ पहुँच गये।”

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।

आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; गुरु-पुत्रम्—मेरे गुरु के पुत्र को; इह—यहाँ; आनीतम्—लाया गया; निज—उसका अपना; कर्म—पूर्वकर्मों के फलों का; निबन्धनम्—बन्धन-भोग करता हुआ; आनयस्व—ले आओ; महा-राज—हे महान् राजा; मत्—मेरा; शासन—आदेश; पुरः-कृतः—प्राथमिकता देते हुए।

भगवान् ने कहा, “अपने विगत कर्म-बन्धन का भोग करने से मेरे गुरु का पुत्र आपके पास यहाँ लाया गया है। हे महान् राजा, मेरे आदेश का पालन करो और अविलम्ब उस बालक को

मेरे पास ले आओ।”

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ।
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

तथा—ऐसा ही हो; इति—(यमराज ने) ऐसा कहते हुए; तेन—उसके द्वारा; उपानीतम्—आगे लाया गया; गुरु-पुत्रम्—गुरु के पुत्र को; यदु-उत्तमौ—यदुओं में श्रेष्ठ कृष्ण तथा बलराम; दत्त्वा—देकर; स्व-गुरवे—अपने गुरु को; भूयः—फिर से; वृणीष्व—कृपया चुन लीजिए; इति—इस प्रकार; तम्—उससे; ऊचतुः—उन्होंने कहा।

यमराज ने कहा, “जो आज्ञा” और गुरु-पुत्र को सामने ला दिया। तत्पश्चात् यदुओं में श्रेष्ठ उन दोनों ने उस बालक को लाकर अपने गुरु को भेंट करते हुए उनसे कहा, “कृपया दूसरा वर माँगिये।”

श्रीगुरुवाच

सम्यक्सम्पादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ।
को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

श्री-गुरुः उवाच—उनके गुरु सान्दीपनि मुनि ने कहा; सम्यक्—पूरी तरह; सम्पादितः—पूरा हुआ; वत्स—मेरे बालक; भवद्भ्याम्—तुम दोनों के द्वारा; गुरु-निष्क्रयः—गुरु-दक्षिणा; कः—जो; नु—निस्सन्देह; युष्मत्-विध—आप जैसे पुरुषों के; गुरोः—गुरु के लिए; कामानाम्—उसकी इच्छाओं का; अवशिष्यते—शेष रहता है।

गुरु ने कहा : मेरे प्रिय बालको, तुम दोनों ने अपने गुरु को दक्षिणा देने के शिष्य-दायित्व को पूरा कर लिया है। निस्सन्देह, तुम जैसे शिष्यों से गुरु को और क्या इच्छाएँ हो सकती हैं ?

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।
छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्वह परत्र च ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

गच्छतम्—जाओ; स्व-गृहम्—अपने घर को; वीरौ—हे दोनों वीर; कीर्तिः—यश; वाम्—तुम्हारा; अस्तु—होए; पावनी—पावन बनाने वाला; छन्दांसि—वैदिक स्तुतियाँ; अयात-यामानि—नित नूतन; भवन्तु—होए; इह—इस जीवन में; परत्र—अगले जीवन में; च—तथा।

हे वीरो, अब तुम अपने घर लौट जाओ। तुम्हारा यश संसार को पवित्र बनाये और इस जन्म में तथा अगले जन्म में वैदिक स्तुतियाँ तुम्हारे मन में सदैव ताजी बनी रहें।

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ।
आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

गुरुणा—उनके गुरु द्वारा; एवम्—इस तरह से; अनुज्ञातौ—विदा किये जाने पर; रथेन—अपने रथ में; अनिल—वायु की तरह; रंहसा—वेगवान; आयातौ—आये; स्व—अपने; पुरम्—नगर (मथुरा); तात—हे प्रिय (राजा परीक्षित); पर्जन्य—बादल की तरह; निनदेन—गर्जन; वै—निस्सन्देह ।

इस तरह अपने गुरु से विदा होने की अनुमति पाकर दोनों भाई अपने रथ पर बैठ अपनी नगरी लौट आये । यह रथ वायु की तेजी से चल रहा था और बादल की तरह गुँज रहा था ।

समनन्दप्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ।

अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

समनन्दन्—खुशी मनाई; प्रजाः—नागरिकों ने; सर्वाः—सभी; दृष्ट्वा—देखकर; राम-जनार्दनौ—बलराम तथा कृष्ण को; अपश्यन्त्यः—न देख पाने से; बहु—अनेक; अहानि—दिन; नष्ट—खोया हुआ; लब्ध—पुनः प्राप्त; धनाः—सम्पत्ति वालों को; इव—सदृश ।

सारे नागरिक, जिन्होंने अनेक दिनों से कृष्ण तथा बलराम को नहीं देखा था, उन्हें देखकर परम प्रसन्न हुए । लोगों को वैसा ही लगा, जिस तरह धन खोये हुआ को उनका धन वापस मिल जाय ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा अपने गुरु-पुत्र की रक्षा” नामक पैंतालीसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए ।